प्राथमिक शिक्षिकाओं में भूमिका संघर्ष

डॉ0 अनीता बाजपेयी

एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग,

श्री जय नरायण पी0जी0 कालेज,
लखनऊ (उ0प्र0)

सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों की प्रस्थिति एवं भूमिका का प्रश्न एक ऐसा विषय है जिसे लेकर समाज, वैज्ञानिक अपने अनुभवात्मक अध्ययनों के माध्यम से एक से अधिक मान्य निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करते रहे हैं, परन्तु सिद्धान्त तथा व्यवहार में व्याप्त अन्तर के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति तथा तत्सम्बंधी भूमिकाओं का प्रश्न निरन्तर उलझता रहा है। एक ओर सैद्धान्तिक रूप से विभिन्न युगों, समाजों तथा दार्शनिक मान्यताओं में स्त्रियों को सम्मानपूर्ण प्रस्थिति प्रदान की जाती रही है, लेकिन दूसरी ओर व्यवहार में उन्हें कभी भी उनके वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकें, जिसके कारण उनमें भूमिका संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न हुई।

पश्चिमी देशों में स्त्रियों के अधिकारों से सम्बद्ध विभिन्न आन्दोलनों के परिणामस्वरूप स्त्रियों की प्रस्थितियों और तत्सम्बंधी भूमिकाओं में अनेकों परिवर्तन हुए। भारत में स्वतन्त्रयोपरान्त भारतीय संविधान, जो कि 1950 में ग्रहण किया गया, में यह आश्वासन दिया गया कि स्त्रियों व पुरुषों को प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त हैं। इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है। आज स्त्रियाँ घर की चहार–दीवारी तक सीमित न रहकर विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है। तथापि स्त्रियाँ, पुरुष प्रधान समाज में रहकर शोषित हैं। आज स्त्रियाँ घर के बाहर नौकरी करने जाती है, जहाँ उनकी एक विशेष प्रस्थिति होती है और वे उस विशेष प्रस्थिति के अनुकूल भूमिका निर्वाह करती है जबकि घर में वे अपनी दूसरी प्रस्थिति के अनुरूप व्यवहार करती हुई घरेलू कार्यों व जिम्मेदारियों में व्यस्त रहती हैं। ऐसे में जब उन्हें घर के अन्य सदस्यों का सहयोग प्राप्त नहीं होता है और उन्हें कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेना होता है, तो उनके लिए इतनी भूमिकाओं का निभाना एक समस्या बन जाती है। यह समस्या उस समय और बढ़ जाती है जब दोनों ही भूमिकायें कार्यालयी और घरेलू समान रूप से आवश्यक होती है और वे दोनों भूमिकाओं पर कोई भी निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो पाती। ऐसी परिस्थिति में उन्हें भूमिका संघर्ष का अनुभव करना पड़ता है।

चूँकि महिलायें समाज की धुरी है और किसी भी समाज में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन लाने की मूल इकाई हैं। अतः उनकी भूमिकायें किसी भी सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष दिशा में परिवर्तन उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। अतएव महिलाओं की परम्परागत और नवीन भूमिकाओं, पारस्परिक व व्यवसायिक जिम्मेदारियाँ तथा वे मूल्य व प्रतिमान जो कामकाजी महिलाओं के लिए मानसिक

परेशानियाँ और भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करते हैं, का अध्ययन आवश्यक है।

बोमैन (1954) ने विवाहित कामकाजी महिलाओं की समस्याओं का अध्ययन किया। उनके अनुसार अभी भी परम्परा अनुसार पुरुष घरेलू कार्यों को तथा स्त्रियाँ मजदूरी या रोजगार के कार्यों को कम स्वीकार करते हैं। मजदूरी पेशे में पत्नी को दोहरे उत्तरदायित्व का निर्वाह करना पड़ता है, जिससे कि उन पर न केवल अतिरिक्त भार पड़ता है अपितु वे उनका ठीक ढंग से निर्वाह करने में भी अक्षम रहती हैं।

प्रमिला कपूर (1970) ने अपने महत्वपूर्ण अध्ययन ''मैरिज एण्ड वर्किंग वीमन इन इण्डिया'' में दिल्ली की 300 कामकाजी महिलाओं का वैयक्तिक अध्ययन पद्धति द्वारा अध्ययन कर शिक्षित कामकाजी महिलाओं के वैवाहिक सामन्जस्य को प्रभावित करने वाले तत्वों को ज्ञात करने का प्रयत्न किया उनके अनुसार कामकाजी मातायें, घर व कार्यस्थल की दोहरी अपेक्षाओं, जो कि प्रायः स्वभाव से विरोधी होती हैं, के कारण भूमिका संघर्ष का अनुभव करती हैं। प्राणिशास्त्रीय प्रकार्यों के साथ–साथ स्त्रियाँ लिंग व संस्कृति द्वारा स्पष्ट भूमिकाओं को करती हैं और वे भूमिकायें कभी–कभी उनके रोजगार से सम्बंधित दायित्वों की विरोधी होती हैं।

ग्रेस (1972) ने अपनी पुस्तक ''रोल कॅनफ्लिक्ट एण्ड दि टीचर'' में माध्यमिक विद्यालय के 150 अध्यापक/अध्यापिकाओं का अध्ययन कर उनकी समस्याओं का विश्लेषण कर निष्कर्ष प्रस्तुत किया। सिन्हा (1987) ने अपने अध्ययन ''रोल कॉनफ्लिक्ट अमंग द वर्किंग वीमन'' में तृतीय विश्व के देशों मुख्यतः भारत में कामकाजी महिलाओं में भूमिका संघर्ष के विविध तत्वों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार आधुनिक परिस्थितियां में समयाभाव तथा दोहरी भूमिकाओं की अपूर्ण माँगों के कारण कामकाजी महिलायें अधिकाधिक भूमिका संघर्ष का अनुभव करती हैं। साथ ही कामकाजी गृहणियाँ, गैर कामकाजी गृहणियों की अपेक्षा अधिक भूमिका संघर्ष का अनुभव करती हैं।

इसके अतिरिक्त गुडे (1960), नाय तथ हाफमैन (1963) कपूर (1969), रैपोपोर्ट तथा रैपोपोर्ट (1965), (1969) जौहरी (1970) व गार्डन (1974) हॉल (1975), निचल (1975), नेविल तथा डेमिको (1975) कालारानी (1976), चक्रवर्ती (1977), हालहन और गिलबर्ट (1979) तथा शर्मा (1990) के अध्ययन भी कामकाजी महिलाओं तथा उनमें व्याप्त भूमिका संघर्ष की स्थितियों से सम्बद्ध हैं।

स्त्रियों के लिए शिक्षण कार्य एक सम्मानजनक व्यवसाय के रूप में देखा जाता है, क्योंकि लोगों की धारणा हैं कि इस व्यवसाय में कार्य के घण्टे कम होते हैं तथा अन्य जिम्मेदारियाँ कम होती हैं लेकिन क्या वास्तव में स्थिति ऐसी ही है। क्या जो स्त्रियाँ शिक्षण कार्य में लगी हैं वे अपने दोनों भूमिकाओं यथा घरेलू भूमिका व कार्यस्थल की भूमिकाओं में सामंजस्य कर पा रही है ? क्या वास्तव में शिक्षण व्यवसाय सम्बंधी कार्य इतने कम हैं कि किसी प्रकार भी वे घरेलू दायित्वों के निर्वाह में बाधा उत्पन्न नहीं करते।

प्रस्तुत शोध में लखनऊ नगर के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त कर उनमें से दैव निर्दशन विधि द्वारा 10 विद्यालयों का चयन किया गया तथा इन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण करने वाली 50 विवाहित शिक्षिकाओं से सम्पर्क स्थापित किया गया। आँकड़ों के

संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

प्राथमिक शिक्षिकाओं के साक्षात्कार से ज्ञात हुआ कि विवाहित शिक्षिकायें घर व विद्यालय की नितान्त भिन्न प्रकार की अपेक्षाओं को पूरा करने में स्वयं को अक्षम पाती हैं। 85 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि वे घर के सदस्यों की अपेक्षाओं यथा मैं घर पर ज्यादा समय दूँ, बच्चों का होमवर्क पूरा कराऊँ, पति व बच्चों को दिन में गर्म खाना दूँ आदि को पूरा नहीं कर पाती हूँ। बाकी 15 प्रतिशत शिक्षिकाओं के बच्चे वयस्क होने के कारण उन्हें इन दायित्वों का निर्वाह नहीं करना पड़ता है, जिसके कारण उन्हें इन कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ता या फिर उन्होंने इन परिस्थितियों के साथ सामंजस्य कर लिया है। 70 प्रतिशत शिक्षिकाओं का कहना है कि वे विद्यालय सम्बंधी कार्यों को संतोषजनक तरीके से नहीं कर पा रही है क्योंकि उन पर घरेलू दायित्वों का बोझ ज्यादा है और वे शैक्षिक कार्य व पाठ्य सहगामी क्रियाओं में पूरी तरह सहभागिता नहीं कर पा रही हैं। इसी प्रकार 75 प्रतिशत शिक्षिकाओं का कहना है कि परिवार के सदस्य उनकी घरेलू कार्यों में किसी प्रकार की मद्द नहीं करते, जिससे स्पष्ट है कि घरेलू कार्य आज भी स्त्रियों का ही दायित्व समझ जाते हैं और यही कारण है कि घर के पुरुष सदस्य इसमें सहयोग नहीं देते। शिक्षिकाओं के विषय में प्राथमिक जानकारी से ज्ञात हुआ कि प्राथमिक शिक्षिकाओं की सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति भी अधिक उच्च न होने के कारण अधिकांश शिक्षिकायें नौकर का व्यय वहन करने में भी अक्षम थी या फिर दिन का विद्यालयी समय होने के कारण किसी सहायक को नही रख सकती। इस कारण भी उन पर दोहरे दायित्वों का बोझ ज्यादा है।

साथ ही पत्नी, माँ और गृहणी के रूप में उनकी भूमिका के आदर्शात्मक और वास्तविक क्रियान्वयन के मध्य अन्तर के कारण भी अधिकांश शिक्षिकायें भूमिका संघर्ष का अनुभव करती हैं अर्थात् प्राथमिक शिक्षिकाओं के द्वारा अपनी अपेक्षित घरेलू भूमिकाओं और उनकी वास्तविक पूर्ति के मध्य असन्तुलन व्यवहारिक संघर्ष के रूप में भूमिका संघर्ष उत्पन्न करता है।

अध्यापन कार्यों के लिये पारिवारिक कार्यों से अपेक्षाकृत विमुखता से होने वाली हानि की तुलना में मासिक आय के रूप में प्राप्त लाभ कम होने के कारण प्राथमिक शिक्षिकायें स्वयं में भूमिका संघर्ष का अनुभव करती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षिकाओं की कार्य स्थल के साथ–साथ घर पर भी वे सब कार्य करने पड़ते हैं जो एक सामान्य गृहणी या फिर हमारे समाज में स्त्रियों के लिए नियत किये गये हैं और इन दोहरे दायित्वों के निर्वहन के कारण शिक्षिकायें भूमिका संघर्ष का सामना करती हैं।

सन्दर्भ

- जौहरी, प्रेमा (1970) – ''स्टेट्स ऑफ वर्किंग वीमेन'' (पी–एच.डी. थेसिस), ल0वि0वि0, लखनऊ।
- कला रानी (1976) – ''रोल कानफ्लिक्ट इन वर्किंग वीमेन'', नई दिल्ली : चेतन पब्लिकेशन्संस।
- कपूर, प्रोमिला (1968) – ''स्टडी ऑफ मैरिटल एडजस्टमेन्ट ऑफ एजूकेटेड वर्किंग वीमेन इन इण्डिया'' (डी–लिट् थेसिस) आगरा, आगरा विश्वविद्यालय।

- कपूर, रामा (1969) – ''रोल कानफ्लिक्ट अमंग इम्पलायड हाउसवाइव्स ''इण्डियन जनरल ऑफ इण्डस्ट्रियल रिलेशन, 5(1), पेज–39–76 ।
- सिन्हा, पुष्पा (1987) – ''रोल कानफ्लिक्ट अमंग द वर्किंग वीमेन'' नई दिल्ली – अनमोल, 1987, (7), पेज–127 ।

Copyright © 2016 *Dr. Anita Bajpayee*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.